समाधि-भाव

साधना की चरम अवस्था क्या है, यह पूछने पर श्री श्री माँ ने विभिन्न स्तरों की साधन अवस्थाओं के बारे में कुछ बातें कही थीं —

"चित्त-समाधान कुछ अंशों तक सूखी लकड़ी में आग लगाने के समान है। गीली लकड़ी का पानी सूखने पर जिस प्रकार धक धक करके आग जलने लगती है उसी प्रकार उपासना की एकाग्रता से जब वासना-कामना आदि का रस कम होता है तो चित्त हलका हो जाता है। उस अवस्था में किसी-किसी को भावोन्माद, विह्वलता, आवेश आदि होता है। एक परमार्थ सत्ता का आश्रय ले यह विशेष-विशेष भावावेग में प्रकट होता है।

"इसके बाद 'भाव-समाधान' होता है। जिस प्रकार दहकता हुआ कोयला; एक ही सत्ता के एक अखण्डभाव की तन्मयता में शरीर अवश होकर पड़ जाता है।"

"साधक घण्टों जड़भाव में बिता देता है और अन्तर्गुहा में भावप्रवाह अक्षुण्ण चलता रहता है। इसकी परिपक्व अवस्था में कभी-कभी एक सत्ता का आश्रय लेकर अखण्ड भाव की तरङ्ग बाहर-भीतर को एकाकार करके खेलती रहती है। इसी को भावसमाधान कहते हैं। जिस प्रकार किसी पात्र में उसकी माप से अधिक जल डालने पर वह भर कर छलकने लगता है, उसी प्रकार एक अखण्ड भाव के प्रकाश से चित्त परिपूर्ण होने के

कारण उसका भावावेग विश्वमय विराट स्वरूप में विगलित हो पड़ता है।"

"तीसरी स्थिति का नाम 'व्यक्त-समाधान' है। जिस प्रकार जलते हुए कोयले के भीतर बाहर एक तरह की अग्नि की दीप्ति है, जीव उसी अवस्था में एक सत्ता में स्थिर हो विराजता है।"

"पूर्ण समाधान की अवस्था में साधक के चित्त से सगुण और निर्गुण का द्वन्द्व चला जाता है"

"जिस प्रकार जलते हुए कोयले की राख की आग। साधक इस अवस्था में एक अनिर्वचनीय भाव में स्थिर हो जाता है। अन्तर बाहर का कोई भेद नहीं रहता—"शान्तं शिवमद्वैतम्" अवस्था। सब भावों का स्पन्दन इस अवस्था में लुप्त हो जाता है।"

श्री श्री माँ का समाधिभाव एक अपूर्व दृश्य है। सौभाग्यवश मैंने ऐसी अवस्था अनेक बार देखी है। यहाँ कुछ प्रसंगों का उल्लेख करता हूँ।

किसी दिन चलते फिरते अथवा हठात् अनजान में कमरे में आकर बैठते ही माँ के हँस-हँस कर किसी के साथ कुछ बात करते-करते दृष्टि स्थिर हो जाती एवं साधारण भाव से सब अंग शिथिल हो जाते तथा माँ अवश हो लुढ़क जातीं।

धीर-धीरे पश्चिमाकाश में डूबते सूर्य की तरह उनके लौकिक भाव और व्यवहार तिल-तिल करके न जाने कहाँ समा जाते हैं। इसके बाद श्वास की गति धीमी हो जाती, कभी एकदम

स्थगित हो जाती, वाक्शक्ति बन्द हो जाती, आँखें भी बन्द हो जातीं। सारा बदन ठंडा पड़ जाता, किसी-किसी दिन हाथ पैर लकड़ी की तरह सख्त हो जाते, कभी-कभी अंग प्रत्यंग कपड़े की तरह शिथिल हो जाते, जिस तरफ मोड़ते उसी तरफ गिर जाते। मुख प्राणरस से लाल हो उठता, दोनों कपोल दिव्य आनन्द की ज्योति से उज्ज्वल हो उठते तथा ललाट पर निर्मल शान्त स्निग्धता छा जाती। देह की समस्त क्रियाएँ स्थगित हो जाती और सम्पूर्ण शरीर की रोमावलियों से अपूर्व दीप्ति निकलती। इस समय सबको ही ऐसा लगता कि माँ क्रमशः समाधि की गम्भीरता में लीन होती जा रही हैं। इस तरह से १०, १२ घण्टे बीत जाते, उनको सचेतन कराने की अनेक चेष्टाएँ होतीं किन्तु उनका कोई विशेष फल नहीं होता।

मैंने स्वयम् माँ को अनेक बार चैतन्य कराने (जगाने) की व्यर्थ चेष्टा की है। हथेलियों और पैरों के तलवे जोर से मल शरीर पर आघात या चोट करने से भी कुछ प्रतिक्रिया नहीं होती। पर प्रकृतावस्था में आने के समय आपसे चेतन हो उठतीं। बाह्य व्यवहार के ऊपर वह निर्भर न था।

जब माँ फिर से सांसारिक ज्ञानभूमि में लौटतीं, तब धीरे-धीरे श्वास की गति आरम्भ होती और क्रमशः दीर्घ हो जाती, अंग-प्रत्यंगों का हिलना डुलना स्वाभाविक गति से धीरे-धीरे आरम्भ होने लगता, किसी-किसी दिन जरा देर बाद ही शरीर फिर अवश और शिथिल हो जाता मानो शरीर फिर पूर्वावस्था में ही जाना चाहता है। आँखें खुलने पर बड़ी देर तक अनिमेष देखती रहतीं, फिर आपसे आप बन्द हो जातीं।

जब संज्ञा होने के सभी लक्षण क्रमशः दृष्टिगत होते तब उनको बिठा कर कुछ बातें करने की चेष्टा की जाती। ऐसी अवस्था में प्रायः देखा जाता कि वे बाहरी दुनिया की किसी आवाज को न सुन अन्तर्जगत् में ही लीन हो जातीं। ऐसी हालत में प्रकृतिस्थ होने में बहुत समय लगता। शरीर बहुत धीरे-धीरे स्वाभाविक अवस्था में लौटता।

एक बार ऐसा भी देखा कि समाधि के बाद उनको बड़ी मुश्किल से टहलाया गया। थोड़ा बहुत खिलाया गया, फिर संज्ञाहीन हो घण्टों पड़ी रहीं।

समाधि के बाद स्वाभाविक अवस्था में आने पर भी एक विशेष आनन्द उनके शरीर से स्फुरित होता दीखता। होश आने के पहले कभी हँसना, कभी रोना और कभी हँसना रोना दोनों एक साथ चलते। कभी मौन प्रसन्नता में विभोर रहतीं।

समाधि की अवस्था में कभी-कभी माँ का मुख निष्प्राण देह के समान पीला और निस्तेज तथा शरीर दुर्बल हो जाता था, मुख देखकर आनन्द अथवा निरानन्द का कुछ भी प्रकाश नहीं होता था। ऐसा होने पर हमेशा यह देखा गया कि समाधि भंग होने तथा प्रकृतावस्था में लौटने में बहुत समय लग गया। १९३० ई० में रमना आश्रम में आने के बाद समाधि में इस प्रकार मृतवत् अवस्था में अनेक बार देखी गयी। एक बार ऐसी समाधि में ४, ५ दिन भी बीत जाते थे। समाधि के आरम्भ से अन्त तक जीवन का कोई लक्षण ही नहीं दीखता था एवं इस प्रकार मृत-तुल्य शरीर में प्राणों का संचार हो सकता है इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। देह ठंडी हो जाती थी

एवं स्वाभाविक अवस्था में आने पर भी बहुत देर तक शरीर ठण्डा ही रहता था।

समाधि भंग होने पर आन्तरिक अवस्था के सम्बन्ध में माँ से कभी कुछ पूछने पर माँ बतातीं, "सब प्रकार के कामों और भावों के पूर्ण समाधान का नाम समाधि है। यह ज्ञान और अज्ञान के अतीत की अवस्था है। तुम लोग जिसको सविकल्प कहते हो वह भी इसी चरमावस्था को पहुँचने के लिए है, उसे भी एक प्रकार की साधना ही समझो। सबसे पहले रूप रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्दादि पञ्चतन्मात्र में से कोई एक तत्त्व, वस्तु या विचार उपलक्ष्य हो सम्मुख आता है और उसी को लेकर शरीर ध्यान में स्थिर होता है। उसके बाद यह लक्ष्य सर्वमय होकर 'अहंभाव' को लय कराता हुआ एक ही सत्ता में प्रतिष्ठित कर देता है। इस प्रकार की अवस्था यदि उन्नति को प्राप्त करे तो अन्त में वह एक सत्ता भी कहीं विलीन हो जाती है। तब क्या रहा क्या न रहा इसको समझाने के लिए कोई भाषा या अनुभूति नहीं रहती।

कभी-कभी किसी प्रत्यक्ष कारण के बिना भी माँ के शरीर में अनेक असाधारण लक्षण प्रकाशित होते। कभी लम्बी साँसे चलतीं, सारा शरीर मुड़ने लगता, धीरे-धीरे इधर-उधर टेड़ा हो जाता; ऐसे समय या तो माँ लेट जातीं, नहीं तो हाथ, पैर, सिर आदि समेट कर कुण्डली-सी बना लेतीं। उस समय संज्ञा रहती, कुछ पूछने पर धीरे-धीरे आवेश-जड़ित स्वर में कुछ थोड़ा बहुत बोलतीं।

ऐसी अवस्था के सम्बन्ध में माँ से पूछने पर पता लगा कि वे अपने मूलाधार से सहस्रार तक मेरुदण्ड के भीतर से एक

सूक्ष्म प्राण-प्रवाह अनुभव करतीं, उसके साथ-साथ समस्त शरीर यहाँ तक कि रोमकूप तक में भी एक अकथनीय अपूर्व भावावेग का अनुभव करतीं और इस महानन्द में शरीर का अणु-परमाणु मानो नाच उठता। जो देखतीं, जिसे स्पर्श करतीं, सभी में उन्हें अपनी निज की अवच्छिन्न सत्ता का बोध होता। शरीर का कोई स्वतन्त्र व्यवहार नहीं रहता।

इस समय मेरुदण्ड को अच्छी तरह मलने एवं शरीर की ग्रंथियों को दबाने से थोड़ी देर चुप रहकर फिर अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ जातीं। ऐसी अवस्था में माँ मूर्तिमती आनन्दरूपिणी के रूप में प्रकाशित होतीं एवं उनकी बात दृष्टि तथा व्यवहार में अपूर्व प्रेम की दीप्ति होती।

साधारण अवस्था में भी कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि माँ लेटी-लेटी बातें कर रही हैं, हँस रही हैं किन्तु हाथ पैर खूब ठंडे हैं, नाखून नीले हो गये हैं, बहुतों के मिलकर हाथ पैर मलने पर भी कुछ नहीं हो रहा बल्कि उन लोगों के हाथ ठंडे हो जाते। एक दिन इस अवस्था से प्रकृतावस्था में आने में १२ घंटे लगे थे।

एक दिन आश्रम में शाम होते ही माँ समाधिस्थ हो गयीं। दीदी माँ (माँ की मातृदेवी) माँ के पास वाले कमरे में लेटी थीं। पिताजी कमरे में थे। रात के दो बजे होंगे, मैं बरामदे में बैठा माँ के श्री चरणों का ध्यान कर रहा था। सहसा मानो हृदय के भीतर माँ के चलने का आभास हुआ। आँख खोलकर देखा—कुछ नहीं। कमरे में कुछ शब्द सा सुना। मैंने जाकर लालटेन की रोशनी में दरवाजे पर माँ के भींगे हुए दो पैरों के चिह्न देखे।

भीतर जाकर देखा माँ पहले की तरह ही शय्या पर लेटी हैं, दीदी माँ से पूछा कि क्या माँ बाहर गयी थीं। उन्होंने कहा, "नहीं, तुम्हारी माँ बाहर नहीं गयी थीं।" रात बीत गयी। दूसरे दिन भी सबेरे कुछ देर के लिए माँ होश में आयीं, किन्तु फिर वही अवस्था। उसके दूसरे दिन माँ को फिर चेत तो अवश्य हुआ किन्तु स्वाभाविक अवस्था में आते-आते ३, ४ दिन लगे।

मैंने इस सम्बन्ध में माँ से कुछ दिनों बाद कहा, "सुना है कि समाधि की अवस्था में संज्ञाशून्य शरीर से चलना फिरना सम्भव नहीं है, किन्तु उस रात को मैंने आपके पदचिह्न कैसे देखे ?" माँ ने कहा, "पुस्तकें क्या सब बातें समझा सकती हैं ?"

श्री श्री माँ से एक दिन पूछा, "साधक के क्या-क्या लक्षण होते हैं ?" माँ कहने लगीं, "जब साधक चित्त शुद्धि द्वारा कुछ उन्नत हो जाता है, उस समय उसका भाव कभी बालकवत्, पिशाच या जड़-सा हो जाता है, कभी वह साधारण लौकिक भावों की तरंग ही में बहता है। किन्तु इन सब सामयिक परिवर्तनों में भी उसके चित्त की एकमुखी गति लक्ष्य की ओर ही रहती है। ऐसी अवस्था में लक्ष्य-च्युत होने से उसका वहीं अन्त है।"

"कर्म के बल से साधक अग्रसर होता है, उसके सब व्यवहार एक ही लक्ष्य द्वारा प्रकाशित होते हैं। जैसा कि कभी देखेगा कि यह जड़वत् अचेतन अवस्था में पड़ा है किन्तु जाग्रत अवस्था में सब भावों में ही मानो आनन्द की प्रतिमूर्ति है। क्रमशः एक समय ऐसा आता है कि जब चलना फिरना, सोना बैठना, सब लोकव्यवहारों में मानो एक महान् आनन्द का पुतला

है, वह उस समय बाहर भीतर एक अपूर्व आनन्द-सत्ता में परिणत हो जाता है।"

"इसके बाद एक ऐसी स्थिति आती है जहाँ पहुँचने पर उसका एक सत्ता का संस्कार भी लय हो जाता है। तब उसको साधारण विवेक बुद्धि से समझा नहीं जा सकता। इस अवस्था में उसके देह-स्पन्दन स्थगित हो जाते हैं, उस समय देहत्याग होने की सम्भावना भी कम रहती है; किन्तु जिसमें संसार के कल्याण करनेका संस्कार अवशेष रहता है वह इस अवस्था में भी निर्दिष्ट समय तक अपना शरीर धारण कर सकता है। सभी अवस्थाओं में वह अपरिवर्तित रहता है। यह हमारी समझ की भूल है कि उसको देहधारी समझ कर हम उसे देह के समान परिवर्तनशील समझते हैं।"

"योगबल से जो शरीर त्याग करते हैं उनमें तथा उपरोक्त अवस्था में साधकों में यही अन्तर है कि योगी अपनी स्वेच्छा से शरीर त्याग करते हैं। देह त्यागने के समय तक देह का संस्कार रहने के कारण वे क्रियाधीन रहते हैं। जिनका महायोग अथवा निर्विकल्प समाधि में देहपात होता है उनको स्वकृत किसी क्रिया की अपेक्षा नहीं रहती। पूर्व के साधन-संचित कर्मफल के शेष होने पर उसका देहपात अपने आप हो जाता है। उनमें जन्ममृत्यु का कोई संस्कार नहीं रहता।"

श्री श्री माँ ने एक दिन प्रसंगवश बताया :—

(१) "अपने अपने भावानुसार एकनिष्ठ ध्यान तथा धारणा से चित्तशुद्धि होती है।"

(२) "उसके बाद एकनिष्ठ भाव की साधना से खण्ड-खण्ड भाव एकसूत्र में गुँथ जाते हैं ।"

(३) "फिर खण्ड-खण्ड भावधाराएँ एकमुखी हो जाती हैं तथा साधक भीतर बाहर जड़वत् हो जाता है ।"

(४) "उसके बाद एकसत्ता का आश्रय ग्रहण कर साधक अखण्ड भाव में प्रतिष्ठित हो जाता है ।"

माँ हर समय ऐसी बातें नहीं कहतीं अथवा बात करते-करते सहसा चुप हो जाती हैं । हमेशा ही बहुत से भक्त उन्हें घेरे रहते हैं । ऐसे समय भक्तों के कल्याण के लिए जब जो कुछ कहतीं वह सब लिपिबद्ध करना सम्भव भी नहीं होता । अनेक विषय तो सबके समझ में भी नहीं आ सकते ।

श्री श्री माँ ऐसे सार्वजनिक रूप में उपदेश देती हैं कि बहुधा उसका यथार्थ मर्म समझना हम जैसे लोगों की समझ से बाहर है । फिर भी उनके श्रीमुख की पवित्र वाणी जब जिसके हृदय को आन्दोलित कर देती है तब वह अपने निज के भाव तथा सीमाबद्ध ज्ञान के द्वारा जो कुछ समझ पाता है उसका ही प्रकाश करता है । हिमालय की अनन्त जलराशि कितनी छोटी बड़ी नद-नदियों में प्रवाहित हो कितनी ऊसर भूमि को उर्वरा बनाती है, उसका अनुमान करना सहज नहीं है । इन निरन्तर प्रवाहित नद-नदियों से हिमालय की कुछ घटती बढ़ती नहीं होती । किन्तु उसके द्वारा जगत का निरन्तर कल्याण होता रहता है ।

श्री श्री माँ के स्पर्श, इंगित, बात, हंसी द्वारा हमारे जीवन में प्रतिक्षण कितना परिवर्तन होता रहता है यह बताना सम्भव नहीं ।

हम लोगों के नित्यप्रति के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं में उनके आशीर्वाद का क्या स्थान है यह सब बताना माँ की महिमा को कम करना है यह धारणा निर्मूल है । उसके द्वारा उनके नाम का ही कीर्तन होता है और वह अनजाने हमें सन्मार्ग की ओर अग्रसर करा देता है ।

●